# महर्षि वसिष्ठ की शिवोपासना

ब्रह्माजी के मानसपुत्र महर्षि वसिष्ठ एक महान् महर्षि हो गये हैं। उन्हें न केवल भगवान् राम का अपितु रघुकुल या वंश का गुरु होने का गौरव प्राप्त है। उन्हें ब्रह्मवर्चस और अलौकिक शक्ति भगवान् शंकर के अनुग्रह से ही मिली थी। वे भगवान् महेश्वर की आराधना में कठोर तप किया करते थे। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह – इन पाँचों यमों तथा शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर – प्रणिधान – इन पाँचों नियमों का वे यथाविधि पालन करते थे। प्रातःकाल और सांयकाल के समय अग्निहोत्र करने का उनका नियम था। यही अग्निहोत्र – विधि पूरी करने के लिये वे नन्दिनी नाम की गौ को अपने आश्रम में रखते थे। उन्हें यह गौ प्राणों से भी अधिक प्रिय थी और इसकी रक्षा तथा सेवा के लिये वे सब कुछ कष्ट उठा सकते थे। इसी गौ के लिये उनका विश्वामित्र से चिरकालतक युद्ध होता रहा।

सुरधेनु नन्दिनी कभी बाँधी नहीं जाती थी। उसे जब भ्रमण करने की इच्छा होती तो वन में जाकर घूम – घाम आती। एक दिन वह आश्रम से भ्रमण करने के लिये कुछ दूर निकल गयी। वहाँ एक बड़ा गड्ढा था। गड्ढे की गहराई का पता नहीं लगता था। नन्दिनी उस जलाशय के तट पर चर रही थी। उसी समय पैर फिसलने से वह गड्ढे के जल में गिर पड़ी।

सांयकाल का समय था। प्रतिदिन नन्दिनी सूर्यास्त होने के पहले ही आश्रम में पहुँच जाया करती थी। उस दिन वह रात हो जाने पर भी नहीं आयी तो महर्षि वसिष्ठ चिन्तित हो गये और वे उसे ढूँढ़ने के लिये निकल पड़े। ऊबड़ – खाबड़ भूमि में खोजते हुए वे उसी गड्ढेके समीप पहुँचे। उसमें से उसकी करुण आवाज सुनकर मुनि को नन्दिनी के गिर जाने का पता लग गया।

महर्षि वसिष्ठ ने उसी समय सरस्वती नदी का स्मरण किया और उनकी प्रार्थना से सरस्वती ने अपने निर्मल जल से उस गर्त को पूरा भर दिया। नन्दिनी झट बाहर आ गयी और महर्षि के साथ आश्रम को चली आयी। परोपकारी वसिष्ठ ने सोचा कि इस महागर्त का रहना जीवों के लिये बहुत हानिकर है और अनेक जीव – जन्तुओं के इस विवर में गिरकर मर जाने का भय है, इसलिये इसको भर देना परम आवश्यक है।

इस विचार से वे पर्वतराज हिमालय के यहाँ गये। हिमालय को महर्षि के आगमन से बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने पाद्य, अर्घ्य आदि सत्कार से उनका प्रेमपूर्वक स्वागत किया और कहने लगे कि 'हे मुनिश्रेष्ठ! आज इन पवित्र चरणों की रज के स्पर्श से यह देश पवित्र हो गया और मेरा जीवन सफल हो गया। देवों के भी परम पूज्य आप – जैसे महर्षियों का आगमन साधारण भाग्य से नहीं होता। मेरे योग्य सेवा का आदेश कीजिये। आप – जैसे महर्षियों एवं पुण्यात्माओं की सेवा में मेरा सभी कुछ समर्पित है।'

महर्षि वसिष्ठ ने उनके वचन सुनकर प्रसन्न होते हुए उस गर्त की बातें उन्हें बतलायीं और

किसी पर्वत द्वारा उस गर्त को भर देने के लिये कहा। इस पर हिमालय ने कहा कि 'मैं तो पर्वत भेजने के लिये तैयार हूँ, पर उसके वहाँतक जाने का उपाय क्या है? पहले तो पर्वतों के पक्ष थे और वे जहाँ चाहते थे, उड़कर चले जाते थे, पर अब तो इन्द्र ने उनके पक्षों को काटकर उन्हें अचल कर दिया है, जिससे वे कहीं नहीं आ-जा सकते। ऐसी अवस्था में यहाँ से पर्वत का पहुँचना असम्भव है।'

वसिष्ठ ने कहा- 'हे पर्वतोत्तम! आपका कहना तो ठीक है, पर एक उपाय से काम चल सकता है। वह यह कि आपके नन्दिवर्धन नामक पुत्र का अर्बुद नामवाला एक मित्र है, उसमें उड़ने की शक्ति है। वह यदि चाहे तो नन्दिवर्धन को क्षणभर में मेरे आश्रम के समीप पहुँचा देगा। यदि मुझ पर आपकी श्रद्धा हो तो बिना किसी प्रकार के दुःख माने उसे वहाँ भेज दीजिये।'

हिमालय बड़े संकट में पड़ गये। उनका एक पुत्र मैनाक पक्षच्छेद के भय से सागर में छिपा बैठा था। दूसरे को वसिष्ठ लेने आये। पुत्रों के वियोग में जीवन किस प्रकार सुख से बीतेगा, उन्हें इसी बात की चिन्ता थी। परंतु इसी के साथ-साथ उन्हें इसका भी भय था कि कहीं वसिष्ठजी प्रतिज्ञाभङ्ग से कुपित होकर शाप न दे दें। उन्होंने पुत्रवियोग को ब्राह्मण-शाप से अच्छा समझकर नन्दिवर्धन को वसिष्ठ ऋषि के आश्रम में जाने का आदेश दे दिया।

नन्दिवर्धन ने विनयपूर्वक अपने पिता से कहा-पिताजी ! वह देश तो बहुत ही बुरा है। वहाँ पलाश, खैर, धव, सेमर आदि जितने वृक्ष हैं, उनमें न सुगन्धित पुष्प हैं और न मधुर फल ही होते हैं। भयंकर कोल, भील आदि दुष्ट जातियाँ ही उस प्रान्त में निवास करती हैं। वहाँ कोई नदी भी नहीं बहती, जिससे उस देश में रमणीयता आ सके। सबसे प्रधान बात यह है कि आपके चरणों की सेवा छोड़कर मुझे कहीं दूसरी जगह जाने में बड़ा कष्ट होगा। अतएव आप हमें अपनी ही शरण में रखिये।

वसिष्ठजी ने कहा-'नन्दिवर्धन! तुम वहाँ की कुछ भी चिन्ता मत करो। तुम्हारे शिखर पर मैं नित्य स्वयं निवास करूँगा। विमल सलिल से लहराती हुई नदियाँ बुलाऊँगा। जिससे मनोहर पत्र, पुष्प और फलों से परिपूर्ण वृक्षों से उस देश की अलौकिक शोभा हो जायगी। मनोहर कलरव करनेवाले असंख्य पक्षियों से उसकी रमणीयता देखते ही बनेगी। उस समय नाना प्रकार के जन्तु आकर उस देश में निवास करने लगेंगे। इन सबके अतिरिक्त मैं अपनी तपस्या के बल से भगवान् शंकर को प्रतिष्ठित कर उस प्रदेश का इतना महत्त्व बढ़ा दूँगा कि पृथ्वी के सभी प्रान्तों से सहस्त्रों की संख्या में लोग वहाँ आकर अपना जन्म सफल करेंगे। वहाँ सभी देवताओं का वास होगा।'

मुनि के वचन सुनकर नन्दिवर्धन को बड़ी प्रसन्नता हुई और वह अर्बुद की सहायता से वसिष्ठजी के साथ उनके आश्रम में जा पहुँचा। अर्बुदाचल ने नन्दिवर्धन को उस गर्त में छोड़ दिया और स्वयं भी वहाँ ही रह गया। उन दोनों पर्वतों पर वसिष्ठजी बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे कि तुम लोगों को जो वर माँगना हो माँग लो, मैं बहुत प्रसन्न हूँ।

अर्बुदाचल ने कहा कि 'महर्षे! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो यह वर दीजिये कि मेरे इस निर्मल

सलिल से परिपूर्ण झरने की ख्याति संसारभर में नागतीर्थ के नाम से हो जाय। इसमें स्नान करने से मनुष्य को परम धाम मिले। यदि वन्ध्या स्त्री भी इसमें स्नान कर ले तो उसे पुत्र प्राप्त हो जाय।'

वसिष्ठजी ने प्रसन्तापूर्वक 'ऐसा ही होगा' यह कहा। तदनन्तर नन्दिवर्धन ने वर माँगा कि आप सर्वदा यहाँ निवास करें और इस स्थान का 'अर्बुद' यह नाम प्रसिद्ध हो। वसिष्ठजी ने इन दोनों वरों को देकर उसी पर्वत पर अपना स्थायी आश्रम बनाया और देवी अरुन्धती के साथ उसमें निवास करने लगे। अपनी तपस्या के प्रभाव से वे गोमती नदी को वहाँ ले आये, जिसमें स्नान करने से घोर पाप करनेवाला भी मनुष्य स्वर्गलोक को प्राप्त होता है। माघ के महीने में मनुष्य इसमें स्नान कर जितने तिलों का दान करता है, उतने वर्षतक स्वर्ग में अलौकि सुख भोगता है।

उस स्थान का इतना सौन्दर्य और माहात्म्य बढ़ाने पर भी वसिष्ठजी को संतोष नहीं हुआ और दयासागर भगवान् शिव के निवास के बिना वह प्रान्त सूना-सा प्रतीत होता था। जिस देश में भगवान् शिव का मन्दिर न हो, वह कितना ही सुन्दर क्यों न हो, कुदेश ही है। इसीलिये वसिष्ठजी ने महादेवजी की आराधना में दुष्कर तप करना प्रारम्भ कर दिया। सौ वर्षोंतक उन्होंने केवल फलों का आहार किया। दो सौ वर्षतक केवल सूखे पत्ते खाकर रहे। पाँच सौ वर्षतक केवल जल पीकर बिताये और एक हजार वर्षतक केवल हवा पीकर भगवान् की आराधना करते रहे। तब भगवान् शंकर उनके ऊपर प्रसन्न हुए। उस समय पर्वत को भेदकर उनके सामने एक परम सुन्दर शिवलिङ्ग[1] प्रकट हुआ। उसे देखकर वसिष्ठजी को बड़ा आश्चर्य हुआ और वे अनेक प्रकार से उनकी स्तुति करने लगे। अनन्तर उसी लिङ्ग में से यह वाणी निकली कि 'हे मुने! तुम्हारे मन की सब बातें मुझे ज्ञात हैं। तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करने के लिये आज से मैं सदा इस लिङ्ग में निवास करूँगा। इसके पूजन से मनुष्यों को सब प्रकार के सुख प्राप्त होंगे। मेरी प्रसन्नता के लिये इन्द्र के द्वारा भेजी गयी इन त्रैलोक्य-पावनी मन्दाकिनी में स्नान कर जो इस अचलेश्वर नामक लिङ्ग का दर्शन करेगा, वह जन्म और मरण से रहित परमपद को प्राप्त होगा।'

इतना वरदान देकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये और वसिष्ठजी भगवान् शंकर के अनुग्रह से अत्यन्त प्रसन्न होकर अनेक तीर्थों और देवों को वहाँ ले आये। (स्कन्दपुराण, प्रभासखण्ड, अर्बुद. अ. 1-4)

(यह कथा गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित कल्याण के शिवोपासनांक से ली गयी है।)

❀❀❀❀❀❀

1. अर्बुदगिरी पर अचलेश्वर महादेव हैं। पावन पुरी काशी में संकटाघाट पर भी वसिष्ठेश्वर शिव प्रतिष्ठित हैं।